

## काशी का सांस्कृतिक इतिहास

भारतवर्ष के कुछ ही नगर ऐसे हैं, जो व्यक्ति-विशेष एवं संस्कृति-विशेष के कारण सदियों से अलग पहचाने जाते रहे हैं। काशी नगरी को यह गौरव प्राप्त है। इसकी संस्कृति, कला, धर्म, दर्शन, गुण, चरित्र, विचार एवं संगीत-परम्परा का मनोसुग्धकारी तथा अपराजोय इतिहास क्षण-मात्र में मानस-पटल पर अंकित हो उठता है। इस नगरी की महत्ता बढ़ाने में यहाँ के गुणी, पण्डित, संत, साधक, महात्मा, औलिया, फकीर, अवधूत, कापालिक, साहित्यकार, चित्रकार, वयंग्यकार, कवि, लेखक, नाटककार एवं गुणग्राहक राजा, रईसों एवं संगीतज्ञों की पीढ़ी की योगदान विशेष चिरस्मरणीय है, जिनके प्रकाण्ड पाण्डित्य-प्रकाश से समय-समय पर पूरा विश्व आलोकित होता रहा। यही कारण है कि हर युग में अनेकों धर्म, सम्प्रदाय, साहित्य, कला, दर्शन, राजनीति, आयुर्वेद एवं संगीत के दिग्गज आचार्यों एवं प्रवर्तकों को भी यहाँ की पुण्यभूमि की मिट्टी के अपने मस्तक पर लगाकर इस नगरी को शत-शत नमन करना पड़ा है। कितने ही धर्माचार्यों, उपदेशकों, विद्वानों की गर्वोक्तियाँ यहाँ आकर चूर-चूर हुई हैं और विश्व-विश्रुत विद्वान् भी यहाँ आकर नतमस्तक हुए हैं। यहाँ अनेक धर्म-सम्प्रदाय फले फूले और विकसित होकर उन्होंने सम्पूर्ण जनमानस की विचारधारा को प्रभावित किया। वह क्षेत्र चाहे कला का रहा हो, चाहे धर्म का, चाहे साहित्य का रहा हो, चाहे राष्ट्रीयता का रहा हो, अथवा संगीत का रहा हो। प्रत्येक क्षेत्र में इस पावन-भूमि ने ऐसे-ऐसे जाज्वल्यमान नक्षत्रों को जन्म देने का गौरव प्राप्त किया है जिनकी विद्यारूपा, स्वाभिमान, देशभक्ति, कवित्वशैली, लेखनशैली, विद्वत्ता, पाण्डित्य, कला-साधना, गायन, नर्तनशैली से विद्वानों से लेकर जनमानस तक सभी प्रभावित हुए।

काशी की संगीत-परम्परा का क्रमबद्ध इतिहास यों तो प्रमाणिकता के अभाव में अप्राप्य-सा है, किन्तु १६वीं शती के पूर्व के इतिहास का अवलोकन करने पर कहीं-कहीं किसी घटनाक्रम के उल्लेख से स्पष्ट प्रमाण मिलता है, कि संगीत-कला इस नगरी से एकदम विलुप्त कभी भी नहीं हुई। भारतीय संगीत यहाँ के जन-जीवन में हमेशा से घुला-मिला रहा, भले ही उसकी सर्वव्यापकता न रही हो और वह एक वर्ग-विशेष तक ही सीमित रही हो। काशी प्राचीनकाल से ही संगीत-नगरी के रूप में विख्यात रही है। यहाँ संगीत की समुन्नति के लिए शिक्षालयों की राज्य की ओर से व्यवस्था का वर्णन बौद्ध-ग्रन्थों की जातक-कथाओं में वर्णित काशीराज ब्रह्मदत्त क शासन काल में प्राप्त है। उस समय यहाँ के विख्यात वीणावादक 'गुप्तिल' ने उज्जैन के अपने समकालीन वीणावादक 'मुसिल' को वीणावादन की प्रतियोगिता में पराजित किया था। बैदिककालीन नगरवधुएँ श्यामा, सुलसा चित्रलेखा आदि संगीत, नृत्य के माध्यम से नागरिकों का मनोरंजन करती थीं। नागरिकों के पारिवारिक, सामाजिक, मांगलिक एवं धार्मिक उत्सवों के अवसर पर इनके संगीत-नृत्य का प्रदर्शन आवश्यक होता था। इनके प्रदर्शन में राम, कृष्ण के लीला पदों का भक्तिपूर्ण संगीतमय नृत्य-प्रदर्शन प्रमुखतम था। समाज में इनका पूर्ण सम्मान एवं आदर था। संगीत ही इनकी आजीविका एवं भरण-पोषण का मुख्य साधन था। यद्यपि दक्षिण के मंदिरों की तरह उत्तर भारत में देवालियों में नृत्य-संगीत प्रदर्शन के लिए 'देवदासी प्रथा' का प्रचलन नहीं था किन्तु यहाँ के धार्मिक वातावरण के प्रभाव से ये संगीत-व्यावसायिक नर्तकियाँ अछूती नहीं थीं, जिससे समय-समय पर यहाँ के विभिन्न मंदिरों, देवालियों एवं देवस्थानों में आयोजित झूलनोत्सव, जन्मोत्सव वार्षिक एवं विशेष श्रंगार आदि सुअवसरों पर नृत्य-संगीत का रसास्वादन जनसामान्य को भी सहज प्राप्त होता था, जिसकी आतुरतापूर्वक प्रतीक्षा नगरवासी भी करते रहते थे। यद्यपि इस वर्ग द्वारा संगीत को अपनी आजीविका, भरण-पोषण का व्यवसाय बना लेने से संगीतकला कुछ काल तक समाज से परित्यक्त सी हुई, किन्तु इन्हीं के द्वारा संगीतकला जीवित भी रह सकी, इसमें कोई सन्देह नहीं।

भारतीय संगीत ने भारत पर आक्रमण करने वाले विदेशी लुटेरे महमूद गजनवी, मुहम्मद गौरी, कुतुबुद्दीन एबक, शमशुद्दीन इल्तमिश, गयासुद्दीन बाम्बन, लोदी, तुगलक, खिलजी, तैमीर, बाबर से लेकर मुगल साम्राज्य के अन्तिम बादशाह बहादुरशाह जफर तक को प्रभावित किया। अनेक विदेशी लुटेरों के साथ आये हुए अनेक विदेशी-ईरानी संगीतज्ञों को संगीत-जिज्ञासा एवं परिचर्चा-संगोष्ठी से भारतीय संगीत भी प्रभावित हुआ। अनेक भारतीय संगीतशास्त्रों में वर्णित भारतीय संगीत शास्त्र-पद्यति में प्रचलित प्राचीन मान्यताएँ यदि विश्रंखलित हुई, तो ईरानी संगीत के प्रभाव-स्वरूप अनेक नवीन

## वाराणसी वैभव या काशी वैभव - सुनील कुमार झा काशी/वाराणसी की संगीत परम्परा

शैलियों का विकास भी हुआ। अनेक प्राचीन वाद्ययंत्रों का स्वरूप यदि खण्डित हुआ, तो अनेक वाद्ययंत्रों का अविष्कार भी हुआ। नवीन तालों, रागों एवं गायन, वादन, नर्तक-शैलियों का जन्म हुआ। इस प्रकार मुगल साम्राज्य के शनैः शनैः पतन के बाद भारतीय संगीत दिल्ली दरबार की सीमा से निकलकर रामपुर, हैदराबाद, विजयनगर, मैसूर, त्रिपुरा, ग्वालियर, पटियाला, जयपुर, लखनऊ, रीवाँ, रायगढ़, आगरा, इन्दौर, भोपाल, कोल्हापुर, पूना, मीरज, सतारा, बनारस आदि रियासतों का राजाश्रम प्राप्त करके वही पुष्पित, पल्लवित एवं विकसित होता गया। देश-काल के सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक वातावरण के अनुकूल तथा नरेशों, नवाबों एवं रईसों की सांस्कृतिक अभिरुतियों के अनुरूप इन्हीं की छत्र-छाया में संगीत का क्रमिक विकास होता गया, जो शनैः-शनैः उस स्थानों के सामाजिक वातावरण में घुलमिलकर कालान्तर में अनेक वंश-परम्परा और घरानेदार गायन, वादन, नर्तन परम्परा का कारण बना।

मुसलमान बादशाहों एवं नवाबों के समय के अनेक विद्वानों में प्रसिद्ध 'अलबरूनी' इतिहासकार 'उतवी' दर्शन शास्त्र एवं संगीत विद्वान 'फरावी' तारीखे-सुबुक्तगीन का लेखक 'वैहाकी', 'शहनामा' के लेखक महाकवि 'फिरदौसी' तथा सन् १८५५ ई. में अवध के नवाब की संगति में रहने वाले प्रसिद्ध पुस्तक 'म-अदन-उल-मौसिकी' के लेखक करम इमाम की पुस्तक को देखने से यह ज्ञात होता है कि करम इमाम ने अपने युग के अनेक संगीत प्रेमी नवाब हुसैन अली खाँ, सैयद मीर अली, शिकोहाबाद के रईस सैय्यद गुलाम अब्बास, बौदा के नवाब जुल्फिकार अली खाँ आदि की सत्संगति में रहकर उस समय के अनेक कलावन्तों को कई-कई बार सुना था, जिसमें मियाँ जानी गुलाम रसूल (टप्पा गायकी के आविष्कारक शोरी मियाँ के पिता), शक्कर-सक्खन, सोरी मियाँ, छज्जू खाँ, जीवन खाँ जैसे ध्रुपद एवं टप्पागायकों रबाब वादकों, नवाब सालारजंग एवं उनके पुत्र का सिम अली खाँ सोरी मियाँ के शिष्य गामू कवाँल, गामी के पुत्र शादी खाँ, बनारस-निवासी श्री प्रसिद्ध मनोहर मिश्र (जिनका सुर, लय, तान, पल्लों पर बेमिसाल अख्तियार था तथा जो ध्रुपद, टप्पा, खयाल आदि शैली के बोजोड़ गायक थे।) बनारस के बका-मदारी (खयाल गायक), गायिकाओं में शादी खाँ की परम प्रिय शिष्याएँ बनारस की चित्रा, इमाम बाँदी टप्पा सायकी में प्रसिद्ध थीं। नर्तकियों में बनारस की गुलबदन-सुखबदन बहुत अच्छी थीं। दो मिजराबों से सितार बजाने में बनारस के वाजपेयी जी बेमिसाल थे, उनकी तैयारी, सफाई अनुपम थी। सारंगी वादकों में कल्लू, धन्नु ढाढ़ी एवं जतन मिश्र (बनारस) अद्वितीय थे। श्री जतन मिश्र की गणना गुणी विद्वान के रूप में की जाती थी। चरखारी की बी रहीमन बाई के लिए ग्वालियर घराने के गुणी गन्धर्व हद्दू-हस्सू खाँ जैसे दिग्गज गायक का कहना था- 'होरी एवं खयाल गायकी की ऐसी असाधारण महिला कलाकार का होना निकट भविष्य में पुनः बड़ा मुश्किल है।' उस युग के सभी गुणी संगीतज्ञ इस मर्दान्ती गायकी की विलक्षण महिला गायिका के घोर प्रशंसक थे, जिन्होंने अपनी गायकी की अमिट छाप सभी के मानस-पटल पर अंकित कर रखी थी। ५० वर्ष की आयु हो जाने पर भी वे इलाहाबाद के बाबू रामसहाय से शिक्षा लेती रहीं। बी रहीमन बाई की सम्पूर्ण गायकी की कुशल संगति करने वाले एकमात्र सारंगीवादक श्री जतन मिश्र थे, जिनकी वादन शैली का सिक्का सभी पर बैठा था। बनारस-निवासी नक्कारावादक सुजान खाँ, शहनाईवादक अहमद अली, नृत्य एवं अभिनय में बेनीप्रसादजी, प्रसिद्ध जी, तबलावादक पं. रामसहायजी (बनारस बाज-घराने के प्रवर्तक), लल्लू जी, प्रकाश जी, एवं उनके भतीजे दुर्गाप्रसाद जी बहुत प्रसिद्ध थे, जिन्हें लखनऊ में नृत्य का उस्ताद माना जाता था। उपर्युक्त सभी कलाकारों की अत्यधिक प्रशंसा करम इमामने की है।

उस युग के गुणी एवं संगीतप्रेमी नरेशों में रीवाँ-नरेश विश्वनाथ सिंह, चरखारी-नरेश रतन सिंह, नवाब रामपुर अहमद अली खाँ, नवाब वाजिद अली साह, काशी नरेश उदित नारायण सिंह सुप्रसिद्ध थे, जिनके राजा श्रय में संगीत के अनेक कलावन्तों ने संसम्मान रहकर संगीतकला की सतत साधना करते हुए इस कला को चरम उत्कर्ष प्रदान किया। काशी-नरेश उदित नारायण सिंह (शासन काल सन् १७९६-१८३५ई.) के पूर्ववर्ती नरेशों में महीप नारायण सिंह (शासन काल सन् १७८१-१७९६ई.) के समय में संगीत सम्राट तानसेन के दौहीत्र-वंश के कलावन्त जीवन खाँ, प्यार खाँ, यहाँ राजाश्रय में रहे। राजा चेतसिंह के शासनकाल में दुलारी, कज्जन, किशोरी, रुक्मिणी, छित्रन बाई के नृत्य संगीत से दरबार जीवन्त था। काशी नरेश बलवन्त सिंह (शासन काल १७३९-१७७०ई.) के समय में चतुर बिहारी मिश्र, जगराज सुकुल, खुशहाल खाँ जैसे कलाकार दरबार की शोभा बढ़ाते थे। उदित नारायण सिंह के बाद की पीढ़ी में ईश्वरीनारायण सिंह (१८३५-१८८९) के दरबार में जाफर खाँ, प्यार खाँ, बासत अली खाँ आदि मुख्य कलावन्त रहे। काशीनरेश प्रभुनारायण सिंह के दरबार (शासन काल- १८८९-१९३१ई.) में बासत अली खाँ के पुत्र अली मुहम्मद खाँ (बड़की मियाँ) थे, जो अपने समय

## वाराणसी वैभव या काशी वैभव - सुनील कुमार झा काशी/वाराणसी की संगीत परम्परा

के सर्वश्रेष्ठ कलाकारों की श्रेणी में गिने जाते थे। यह नेपाल दरबार से काशी नरेश के दरबार में आए थे। प्रसिद्ध ध्रुपदगायक अली बख्श, दौलत खाँ (सरोद वादक) रसूल बख्श, तसदुक हुसैन खाँ, बड़कू मियाँ के छोटे भाई मुहम्मद अली, सादिक अली (बीनकार), निसारअली, रामपुर घराने के वजीर खाँ, मिठाईलाल मिश्र, दरगाही मिश्र, शिवदास-प्रयाग मिश्र, रामगोपाल जी, राम सेवक मिश्र आदि धुरन्धर संगीत-विद्वान समय-समय पर काशी नरेश दरबार के अनमोल रत्न रहे।

अन्तिम मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर के दिल्ली छोड़ने के साथ दिल्ली-दरबार से अपने वाले संगीत कलावन्तों में वीणा वादक वारिस अली खाँ, टप्पागायक अकबर अली खाँ, ध्रुपदगायक निसार अली खाँ एवं खयाल गायक सादिक अली खाँ काशी आए। यहाँ के संगीतमय आत्मीय वातावरण ने उन सभी को ऐसा प्रभावित किया कि वे मुगल दरबार में छूट जाने के गम को भूल गए और यहीं के होकर रह गए। गुलामनबी (शोरी मियाँ) के पिता गुलाम रसूल एवं मियाँ जानी दोनों ही अवध के नवाब आसकुधौला के दरबारी गायक थे, लेकिन नवाब के वजीर हसन खाँ से उन्हें उचित सम्मान गुलां रसूल एवं उनके पुत्र शोरी मियाँ एक लम्बे अरस तक काशी में रहे। टप्पा गायकी के आविष्कारक शोरी मियाँ की आवाज बड़ी पतली एवं जनानी थी, जिसके कारण आपके पिता ने आपके कंठ को खयाल-गायकी के लिए उचित नहीं समझा, जिसके फलस्वरूप शोरी मियाँ में पहले पंजाबी भाषा का अध्ययन अपनी अटूट लगन, निरन्तर साधना द्वारा करके पंजाबी भाषा में श्रृंगार एवं विरह युक्त प्रेमगीतों की अनेक रचनाएँ की और उन प्रेमगीतों, बन्दिशों को एक नवीन, चमत्कारपूर्ण गायन शैली में ढाल कर 'टप्पा गायकी' को जन्म दिया। शोरी मियाँ निःसन्तान थे, फलस्वरूप आपकी टप्पागायकी को लोकप्रिय बनाने का एकमात्र श्रेय आपके एकमात्र प्रिय शिष्य गावू खआँ को है जिनके पुत्र शादी खाँ काशी नरेश श्री उदित नारायण सिंह के दरबार में थे। शादी खाँ ने टप्पे की भरपूर शिक्षा बनारस की चित्रा, इमाम बाँदी को दी। इनकी गायकी ने पूरी काशी में टप्पागायकी की धूम मचा दी। इस प्रकार टप्पे की गायकी को भी काशी नरेश ने अपने में आत्मसात् कर लिया। इमाम बाँदी के पुत्र रमजान खआँ तथा शिष्य नगेन्द्रनाथ भट्टाचार्य द्वारा यह नवीन गायन शैली 'टप्पा' १९वीं शताब्दी के अन्त में बंगाल में पहुँची और प्रसिद्ध हुई। १९वीं सदी के उत्तरार्ध में बेटिया घराने के कलावन्त कामता प्रसाद मिश्र, ज्वाला प्रसाद मिश्र, शिवनारायण जी, गुरु प्रसादजी ने ध्रुपद गायकी में प्रसिद्धि प्राप्त कर टप्पा गायकी को भी लोकप्रियता दिलाने में विशेष योगदान दिया।

इस प्रकार सदियों पूर्व की भारतीय संगीत परम्परा की विभिन्न गायन, वादन, नर्तन शैली की विभिन्न विद्याओं, विभिन्न घरानों के उत्कृष्ट कलाकारों की कला को समुचित आदर, सम्मान, आत्मीयता प्रदान करते हुए इस नगरी के कला-प्रेमी नरेशों, रईसों, नागरिकों और संगीत-साधकों ने अपनी मैलिकता तथा परम्परा को अक्षुण्ण रखते हुए अन्य जगहों से काशी आ बसे संगीतज्ञों को भी भरपूर सहयोग प्रदान कर अपना बना लिया और इसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की श्रीवृद्धि में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। यही कारण है कि जीवन के विविध क्षेत्रों के साथ-साथ इस अप्रतिम नगरी की अविच्छिन्न धार निरन्तर गतिमान रहती हुई वर्तमान समय में भी इस नगरी एवं यहाँ के संगीत साधकों के वर्चस्व को गौरव प्रदान कर रही हैं। संगीत जगत् के महान कलाकारों की श्रेणी में इस नगर के अनेकानेक क्षेत्र के विश्व विश्रुत कलाकार सशक्त हस्ताक्षर के रूप में अपने जीवनकाल में ही संगीत-जगते की गौरवगाथ बन चुके हैं जिनकी कला-साधना, शैली तथा लोकप्रियता को किसी ग्रन्थ के परिचय की आवश्यकता नहीं है।

महत्त्व- अध्यात्म विद्या केन्द्र के रूप में मिथिला के समान काशी का उल्लेख बृहदारण्यक उपनिषद् एवं कौषीत की उपनिषद् में प्राप्त है, जिसमें काशीराज अजातशत्रु ने ब्रह्मज्ञान देने आये हुए गात्र्यबालाकि को एक सहस्र गाय देने की बात कही और यह भी कहा कि आजकल लोग जनक-जनक कहते हुए मिथिला की ओर ही दौड़ते हैं।<sup>३</sup>

सक्षाजित शतानीक ने बलात् पकड़े गई अश्वमेधीय अश्व द्वारा अपना यज्ञ पूरा किया। चूँकि काशीराज का यज्ञ पूर्णरूपेण समाप्त नहीं हुआ, अतः इस हार के कारण काशी वासियों ने अग्निक्षेत्र करना छोड़ दिया।<sup>४</sup> इस उद्धारण में काशीवासी कहते हैं कि हमसे सोमपान छीन लिया गया है, जिससे हम श्रोताग्नि धारण नहीं कर रहे हैं। इस कथन से काशीवासियों की धार्मिक कट्टरता एक वैदिक धर्म के प्रति पूर्ण निष्ठा प्रकट होती है। इस प्रकार के अनेक उद्धारणों, संदर्भों, दृष्टान्तों

## वाराणसी वैभव या काशी वैभव - सुनील कुमार झा काशी/वाराणसी की संगीत परम्परा

से यह स्पष्ट है कि उस युग में मिथिला का स्थान काशी से ऊँचा होने के बावजूद ज्ञान पिपासु लोग अध्यात्म ज्ञान की प्राप्ति के लिए काशी ही आया करते थे इसमें कोई सन्देह नहीं है। महर्षिपाणिनि ने अष्टाध्यायी५ में काशी शब्द को गण के आदि में दिशलाया है और काशिकरूप की सिद्धि भी बतलाई है। ऋग्वेद की सर्वानुक्रमणी में ऋषि प्रवर्दन को काशीराज कहा गया है।